तारीख पे तारीख वाली न्याय व्यवस्था, आंखों पर पट्टी बाँधे खड़ी संवेदनहीन देवी की तरह

भारत की न्यायपालिका दरअसल विधायिका और कार्यपालिका के द्वारा जाने अनजाने किए गए मौलिक अधिकारों का हनन होने के मामलों को देखती है और नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करती है। इसी क्रम में विधायिका कल्याणकारी कानून बनाती है और कार्यपालिका उन्हीं कानूनों की मदद से आमतौर पर एक लोक कल्याणकारी सत्ता की स्थापना करती हैं परंतु भारतीय प्रजातांत्रिक परिवेश में देखा जा रहा है कि विधायिका नागरिकों का मत चूस कर संजीवनी पाती है और कार्यपालिका मध्यमवर्ग की जेब काटकर ऑक्सीजन पाती है परंतु न्यायपालिका आम आदमी को न्याय सुनिश्चित करने का का झांसा देकर सिर्फ न्याय की उम्मीद जगाती है परंतु स्वयं धनकुबेरों के कदमों में लोटती है।

भले ही आपको निर्भया के रेपिस्टों की फ़ाँसी रोकने के लिए रात भर खुली हुई अदालतें में दिख जाएँ , अफजल गुरु और कसाब की फांसी रुकवाने के लिए वकीलों की फौज और न्यायाधीशों के रतजगे दिख जायें , सलमान खान पर आरोप साबित होने के तुरन्त बाद अंतरिम बेल के मामले में मैगी बनने से भी कम समय में जमानत मिल जाए या मतगणना में हुई छेड़ छाड़ के खिलाफ़ २४ घंटे के भीतर सर्वोच्च न्यायालय फ़ैसला सुना दे पर जब बारी आम आदमी की आती है आम आदमी के सामान्य हितों की रक्षा करने के लिए कोर्ट सामने नहीं आता क्योंकि कोर्ट में वकीलों की चलती है और वकील पैसे पे मिलते हैं वो भी ढेर सारा पैसा। आम आदमी को कोर्ट में सिर्फ तारीख मिल सकती है न्याय नहीं।

सनी देओल का डायलॉग तारीख पे तारीख सचमुच भारतीय न्याय व्यवस्था का एक चेहरा बन चुका है। इस तारीख पे तारीख के कारण कई हत्यारे अपनी पूरी जिंदगी सामान्यतया जी लेते हैं, कई राजनेता जेल में फाइव स्टार सुविधाएं पाते हैं और भारत के आम नागरिकों की तुलना में आतंकवादियों को भारतीय न्याय व्यवस्था पर ज्यादा विश्वास है क्योंकि न्यायालय पकड़े जाने की सज़ा देता है ज़ुर्म करने के लिये नहीं।

जब हम पेंडिंग मामलों के बारे में जांच पड़ताल करते हैं तो पाते हैं कि एक एक जज के ऊपर हजारों केसों का निपटारा बाकी है और इन के सुनें फंसे हुए आरोपी सालों से जिलों में सजा पा रहे हैं परंतु न्यायालय को कभी भी इन निर्दोष कैदियों के लिए सुनवाई तेज करने की जरूरत नहीं समझ आती है परंतु कुछ मामलों में थोड़ा भी व्यवधान दिखता है तो न्यायालय स्वत संज्ञान लेने लगते हैं। वैसे भोपाल गैस काण्ड के आरोपी. बोफ़ोर्स तोप के दलाल , माल्या और कई मोदी टाइटल धारी के पलायन पर कोर्ट का मौन या दिखावटी ऐतराज़ इस स्वत: संज्ञान वाली अवधारणा की धज्जियाँ उड़ा सकता है।

यह तो वही बात हुई कि अगर मुझे जो जिम्मेदारी दी गई और उसे निभाने में मैं नाकाम रहूँ तो स्वत: संज्ञान लेकर दो चार अन्य मामलों में अपनी टांग अड़ा दूँ और उन मामलों में हुई लापरवाहियों की आड़

में अपनी गलतियाँ छुपा दूँ । अगर सरकार ऑक्सीजन सिलेंडर उपलब्ध नहीं करवा पा रही है, बेड उपलब्ध नहीं करवा पा रही हैं या पर्याप्त डॉक्टर उपलब्ध नहीं करवा रही है तो इसके लिए जनता भी उतनी दोषी है जिन्होंने उस सरकार को चुना है। मतदान जिसे और जिन मुद्दों पर किया है तो उसी से उन मुद्दों विमर्श करें।

अगर हर मामले में न्यायालय आदेश देने लगे तो फिर मेरे विचार से संविधान के तीन स्तंभ कार्यपालिका विधायिका और न्यायपालिका में से न्यायपालिका के अतिरिक्त दो का कोई औचित्य नहीं रह जाता है। एक बार पटना उच्च न्यायालय ने पटना के नालों की सफाई के लिए आदेश दिए थे, लेकिन शायद न्यायालय को अपने बाकी दायित्व याद आ गए और उसके बाद कभी भी न्यायालय ने मेयर , जिला परिषद अध्यक्ष जैसे जन प्रतिनिधियों के के कामों में अपना आदेश पारित करना की जरूरत नहीं समझी। आप सोचिए कि अगर सरकार का काम न्यायालय करने लगे तो वोटिंग जजों के चयन के लिये करवाइये , अनपढ़ों को वोट देकर क्या मिलेगा ?

यही अदालतें हैं जहाँ से वकील अपने मुवक्किलों से हजारों लाखों की फीस लेकर सिर्फ तारीख लेकर लौटते हैं परंतु जैसे ही इसमें राजनैतिक विप्लव पनपने की गंध मिलने लगती है यही न्यायालय एक ही पेशी में फैसला सुनाने लगते हैं।

एक सवाल है कि भारत में वेश्यावृत्ति कानून अवैध है परंतु हर शहर की एक गली लाल जरूर है। आपको तो पता ही होगा एक विचारधारा भी लाल है परंतु इस लाल को उस लाल से कोई आपत्ति नहीं है।

मुंबई के मंत्रालयों में बार गर्ल की उपस्थिति से कोर्ट को आपत्ति थी परंतु दिल्ली के एक बदनाम इलाके में कुचली और मसली जाती हुई कलियों के लिए स्वत: संज्ञान लेने की फुर्सत किसी भी न्यायालय के पास नहीं है। दिल्ली के बारे में हीं क्या कहूं भारत के हर छोटे बड़े शहर अपने अंदर एक गली या एक मोहल्ला ऐसा जरूर समेटे हुए हैं जहां जवानी बिकती है और मजे की बात ये है किन सारे शहरों में एक कोर्ट भी है और उस कोर्ट को यह नहीं दिखता।

अगर राजनैतिक इच्छाशक्ति ना होती तो यकीन मानिए की राम जन्मभूमि का मसला भी त्रेता युग से कलयुग तक जारी रहता परंतु एक राजनीतिक इच्छाशक्ति ने कोर्ट को त्वरित निर्णय के लिए बाध्य किया। भारतीय न्यायालयों की शिथिल चाल ने भारतीय नागरिकों के मन में भले ही न्याय व्यवस्था के प्रति आस्था कम की है परंतु अपराधियों, असामाजिक तत्वों और आतंकवादियों के मन में भारतीय न्यायपालिका के लिए विश्वास काफी बढ़ा दिया है। भारतीय न्यायपालिका में न्याय पाने के लिए प्रक्रिया इतनी खर्चीली है की एक आम आदमी को दोषमुक्त होने से दोषी होना ज्यादा अच्छा लगता है ताकि खर्च अफॉर्डेबल हो।

मैं नहीं जानता कि मेरा ये लेख भारतीय न्याय व्यवस्था की अवमानना कर रहा है या उसकी खामियों की तरफ इशारा कर रहा है परंतु इतना तो तय है की भारतीय न्याय व्यवस्था ने अपने पाठ्यक्रम को छोड़कर को- करिकुलर एक्टिविटीज पर ज्यादा ध्यान देना शुरू कर दिया है क्योंकि उसे पता है की १० निर्दोष को दोषमुक्त साबित करने में उतनी वाह वाही नहीं मिलने वाली है जितनी एक दुर्दांत अपराधी

की फ़ाँसी रुकवाने में या एक वन्य जीव हत्यारे के एंटीसिपेटरी बेल में या एक घोटालेबाज के बाहर भागने पर या भारत आने पर उसकी मानवाधिकार की रक्षा करने में मिल जायेगी।

एक पत्रकार ने कभी कहा था कि अगर कुत्ता आप को काटता है तो आपको उतना कवरेज़ नहीं मिलता जितना तब मिलेगी अगर आप ने कुत्ते को काटा ।

यदि अस्पतालों में आक्सीजन सिलिण्डर की कमी पर न्यायालय ने स्वतः संज्ञान लेकर एक नयी परम्परा शुरू की है तो कुछ और मामलों की लिस्ट प्रस्तुत है जिस पर स्वतः संज्ञान लिया जा सकता है –

१. देश के किसी भी प्रान्त में सरकारें लॉक डाउन कैसे लगा सकती है जब कि हर भूखे पेट को रोटी मुहैय्या करवाने की औकात किसी सरकार में नहीं ?
२. संविधान में जीने का अधिकार क्यों नहीं है ?
३. अगर सरकारें अच्छी चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करवाने में समर्थ है तो फिर भारत में मेडिकल इन्श्योरेन्स का धंधा क्यों फल फूल रहा है ?
४. राजनैतिक पार्टियाँ जो चुनावी वादे करती हैं तो ये सारे वादे सरकारी खजाने से क्यूँ पूरे होते हैं ?
५. शिक्षा प्राप्त करना अधिकार क्यों है कर्तव्य क्यों नहीं ?
६. यदि जाति वर्ण विहीन समतामूलक समाज की स्थापना संविधान का लक्ष्य है तो आरक्षण की क्या जरूरत ?
७. वकीलों को पीड़ितों से फ़ीस लेने का अधिकार क्यों है ?
८, अगर सारे जज १८ घंटे रोज सुनवाई करें तो सारे लम्बित मामलों का निपटारा कितने दिनों में हो सकता है ?
९, सांसद बनने के लिये सरकारी नौकरी में नहीं होना एक अनिवार्य योग्यता है तो एक बेरोजगार करोड़ों रुपये निवेश करके जब सांसद बनेगा तो उसके ईमानदार रहने की संभाविता कितने प्रतिशत है ?

और कई मुद्दे हैं पर क्या न्यायालय स्वतः संज्ञान लेगा…परन्तु लगता है भारतीय न्यायपालिका को भी सुर्खियों में रहने की आदत हो गई है।

संपर्क
Anjan Kr Thakur
L K Singhania Edu. Centre Gotan Nagaur
Mobile number 7597978293